



2
18

५५
२३४

24

238

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

विषय संख्या आगत नं० १

लेखक डा. मुनिवल्लभार २ मय वंदा

शीर्षक भारत वर्ष में लड़ाई का रीति कारखाना

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

angri University Haridwar Collection. Digitized by S3 Four

[illegible]

५५
२३४

१८६६५

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

५५
२३४

पुस्तकालय

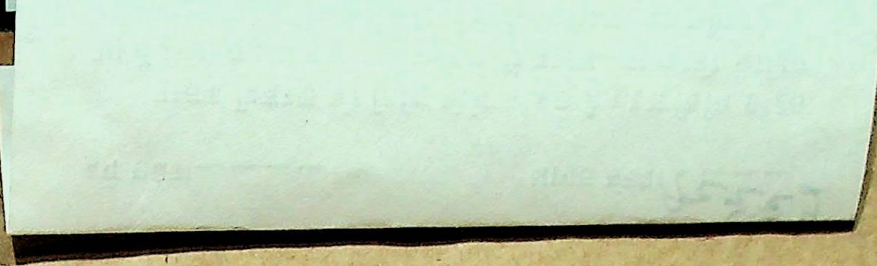
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

दर्ज संख्या ---

आगत संख्या

१२६६५

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा 50 पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।



भारतवर्ष में जड़ी बूटियों की खेती ।

श्रीयुक्त रामेशबेदी आयुर्वेदालंकार

ॐ ओ३म् ॐ

पुस्तक-संख्या

५५/२३४

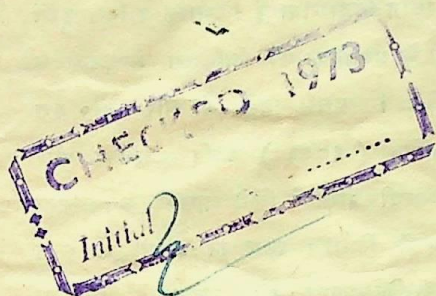
पंजिका-संख्या

१८७५

पुस्तक पर सर्व प्रकार की निशानियां
लगाना वर्जित है। कोई महाशय १५ दिन
से अधिक देर तक पुस्तक अपने पास नहीं
रख सकते। अधिक देर तक रखने के लिये
पुनः आज्ञा प्राप्त करनी चाहिये।

५५

238



१-२५५

१५३.५

उत्तमालय
गुरुकुल कांगड़ी

भारतवर्ष में जड़ी बूटियों की खेती ।

(लेखक—श्रीयुत रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार)

भारतीय चिकित्सा—पद्धति मुख्यतया जङ्गलों में स्वतः उगने वाली जड़ी बूटियों पर निर्भर करती है और भारतीय चिकित्सकों द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली औषधियों की संख्या भी बहुत बड़ी है । ब्रिटिश फार्माकोपिया में वानस्पतिक औषधियों की बहुत सीमित संख्या है । किसी देशी पन्सारी या बूटी वाले की दुकान पर प्रतिदिन की बिक्री के लिये जङ्गल से लाई जाने वाली औषधियों की संख्या सैकड़ों तक पहुँच जाती है । आयुर्वेद में प्रयुक्त होने वाली महत्वपूर्ण औषधियों की संख्या कम से कम एक हजार अवश्य होगी ।

एलोपैथिक चिकित्सा—पद्धति की ओर जितना झुकाव पहले था उतना अब नहीं है । इस नवीन पद्धति का स्थान चिकित्सा की पुरानी पद्धति आयुर्वेद को मिल रहा है । एलोपैथी के साथ सामान्य रूप से कुछ प्रतिक्रिया लोगों में होने लगी है और वे देशी पद्धति को अधिक उत्कृष्ट समझने लगे हैं । भारतीय चिकित्सा—पद्धति में निस्सन्देह कई बहुत अच्छी बातें हैं जिन की आधुनिक विज्ञान उपेक्षा नहीं कर सकता । यह भी सत्य प्रतीत होता है कि अपने देश का जलवायु अनुकूल होने से भारत में उगने वाली औषधियाँ ही यहाँ के निवासियों के लिये अधिक हितकर हो सकती हैं ।

भारतीय औषधियों को इकट्ठा करके उनके रासायनिक संघटन और प्रभाव आदि की विस्तृत परीक्षा की जाय तो हमारा पूर्ण विश्वास है कि उपयोगिता को ध्यान में रखते हुये उनमें

से बहुत सी औषधियाँ आधुनिक चिकित्सा में ली जा सकती हैं। जब से इस ओर थोड़ा बहुत ध्यान दिया जाने लगा है तब से अनेक औषधियाँ एलोपैथिक चिकित्सा में विभिन्न रूपों से हस्तेमाल होने लगी हैं। सुश्रुत, भावप्रकाश और निघण्टु आदि हिन्दुओं के सब चिकित्साग्रन्थों में ज्ञात प्रवाहिकाहर औषधियों में कुटज को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है। भारतीय निघण्टुओं में इसका विशेष वर्णन देखकर इण्डिजीनस ड्रग्स कमेटी ने प्रवाहिका की चिकित्सा में कुटजवृक्ष की वास्तविक उपयोगिता मालूम करने का निश्चय किया। इससे पहले भी आर० सी० दत्त (१८८१), (१८९१) और के० एल० डे० (१८९६) आदि भारतीय और युरोपियन दोनों प्रकार के चिकित्सकों ने प्रवाहिका सम्बन्धी रोगों के लिये इसकी उपयोगिता सन्तोषप्रद घोषित की थी। कमेटी ने कार्य अपने हाथ में लिया। छाल का प्रामाणिक सत्व (Standardised extract) भिन्न भिन्न सरकारी चिकित्सालयों और दवाखानों को भेजा गया जिससे वे इसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में ठीक ठीक मालूम कर सकें। समय समय पर प्राप्त रिपोर्टें बहुत उत्साहवर्द्धक थीं। इससे कमेटी के सदस्यों पर असर पड़ा कि वास्तव में इस में प्रवाहिकाहर गुण विद्यमान हैं। इन गुणों को ध्यान में रखते हुये कई फर्मों ने कुटज के योग बनाये और इस समय कई प्रामाणिक योग मार्केट में हैं जो एलोपैथी चिकित्सा में प्रयुक्त हो रहे हैं। इसी प्रकार डाक्टर कार्तिकचन्द्र बोस के अन्वेषणों ने मस्तिष्क-विकारों में ~~अनेक~~ और स्त्रीरोगों में अशोक आदि अनेक वनस्पतियों की उपयोगिता आधुनिक चिकित्साजगत् के सामने स्पष्ट सिद्ध कर दी है। अब ये औषधियाँ तथा बिल्व, दशमूल, चिरायता, मुलैठी आदि अनेक औषधियाँ एलोपैथ डाक्टर विविध रूपों में प्रयोग करने लगे हैं।

सिद्धान्ततः देशी औषधियों का महत्व हो या न हो परन्तु इस बात को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि जनता का बहुत बड़ा हिस्सा अब तक अत्यन्त सरल और अत्यधिक क्रियाशील औषधियों पर आश्रित है, जिनके उपयोग से प्रायः प्रत्येक भारतीय गृहिणी परिचित है।

नीचे के आंकड़े भारत में औषधियों के यातायात को बताते हैं—

१९३४—३५	में	१ करोड़	६१ लाख,
१९३५—३६	में	२ करोड़	११ लाख,
१९३६—३७	में	२ करोड़	६ लाख रुपये की विदेशी औषधियों की भारत में खपत हुई।

१९३४—३५	में	१३ लाख	२८ हजार,
१९३५—३६	में	१४ लाख	३१ हजार,
१९३६—३७	में	१६ लाख	६४ हजार रुपये की औषधि विदेशों में भेजी गई।

ये आंकड़े बताते हैं कि प्रतिवर्ष दो करोड़ रुपये की विदेशी औपधियाँ भारत में खप जाती हैं। विदेशी औपधियों के इस भारी आयात को कम करने के लिये भारत में औपधियों की खेती की जानी चाहिये।

भारत में प्रत्येक प्रकार की जलवायु, मौसम और जमीन होने से और साथ ही यातायात के उत्कृष्ट और उपयुक्त साधनों के सुगमता से प्राप्त हो सकने के कारण यहाँ औपधियों की खेती को सफलता के साथ उन्नत किया जा सकता है। सुगन्धियों और उद्गनशील अस्थिर तेलों को देने वाले पौधों की भी खेती की जा सकती है। भारतीय निष्पत्तियों और ब्रिटिश फार्माकोपिया की अधिकांश औपधियाँ भारत के जङ्गलों में आप उगती हैं। इन में से कुछ का पहले से ही विदेशों को निर्यात-व्यापार होता है। बिना किसी बात को ध्यान में रखते हुये इन बूटियों को इकट्ठा किया जाता है जिससे स्टैंडर्ड गुण वाली न होने से बाजार में इनके पूरे दाम नहीं उठते। कुछ औपधियाँ, जिनका मूल उत्पत्ति-स्थान भारत नहीं है, इस विस्तृत प्रदेश के विशेष विशेष भागों में सुगमता से उगाई जा सकती हैं। व्यवस्थित कृषि से बड़ा भारी लाभ यह है कि स्टैंडर्ड गुण वाली वनस्पतियों की प्राप्ति हो सकेगी। जङ्गल में उत्पन्न औपधियों के गुणों में विभिन्नता कभी कभी उनके लिये मुनाफे का मार्केट ढूँढ़ने में बहुत भारी अड़चन पैदा कर देती है। साल के किसी विशेष समय में ही पौदे में क्रियाशील तत्वों की प्रचुरता होती है और ये क्रियाशील तत्व पौदे के किसी भागविशेष में ही होते हैं। कच्चा आँवला कपैला और कडुवा स्वाद देता है; परन्तु पकने पर ये रस मधुर रस में परिवर्तित हो जाते हैं। यह इस कारण होता है कि उसमें विद्यमान टैनिक एसिड का परिमाण पक्कफल में बहुत कम रह जाता है। इसलिये यदि हम टैनिक एसिड की प्राप्ति के लिये आँवले को इकट्ठा करना चाहते हैं तो स्पष्ट है कि इसे अपकावस्था में ही इकट्ठा करना मुनाफे का सौदा है। बहेड़े में टैनिक तत्व मुख्यतया फल के बाहर के गूदे में होता है, अन्दर नहीं। इसलिये टैनिक तत्व की उपलब्धि के लिये यही हिस्सा इकट्ठा किया जाना चाहिये।

ज़रूरत इस बात की है कि प्रत्येक स्थान में प्रत्येक वनस्पति की उस अवस्था को ठीक ठीक मालूम किया जाय जिस में उस के क्रियाशील तत्व का अधिकतम परिमाण उस में विद्यमान हो। भारत जैसे विशाल देश में इतने भेदक वायुमण्डलों के होने के कारण तथा साथ ही अनेक प्रकार की ज़मीनों और जलवायुओं के होने के कारण दो विभिन्न स्थानों पर पैदा हुई एक ही वनस्पति निश्चित रूप से एक समान गुण वाली नहीं हो सकती। जलवायु और ज़मीन के वनस्पति की वृद्धि की प्रत्येक अवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना चाहिये और फिर पत्र, पुष्प, फल, त्वक, मूल आदि को उस की अधिकतम उपयोगी अवस्था में संग्रह करना चाहिए।

एक जैसी अवस्थाओं में कृत्रिम रूप से खेती करने से और ठीक मौसम में इकट्ठा करने से गुणों की यह अनिश्चितता बहुत हद तक घटाई जा सकती है। समय, संग्रह करने का तरीका, बाजार में भेजने के लिये तैयार करने में असावधानताएं, यातायात में उन्नत विधियों से काम न होना आदि कारण हैं जो औषधियों के परिमाण और गुण पर प्रभाव डालते हैं। औषधियों को ठीक मौसम पर इकट्ठा न करने से बहुत क्रियाशील औषधियों की भी शक्ति नष्ट हो जाती है। व्यवस्थित कृषि से ये कारण दूर किये जा सकते हैं पर यह कृषि वैज्ञानिक आधारों पर और सुसंगठित होनी चाहिए।

मौसम एक महत्वपूर्ण कारण है। सन् १९११ में अधिक वर्षा के कारण बेलेरियन की जड़ों की कई फसलों में लगभग पूर्ण असफलता रही। अत्यधिक शुष्क ऋतु लेवेण्डर, रोज-मैरी आदि वनस्पतियों की फसल को सीमित कर देती है। जोर की आंधी और पाला कुछ ही समय में सारी फसल का सफाया कर सकते हैं। विदेशों में भी इन दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। यद्यपि वहां सूखा और बारिश के समय को बहुत कुछ पहले से ही जान लिया जाता है, फिर भी जब वह अप्रत्याशित हो जाता है तो हानि बहुत अधिक होती है। सन् १९०० में नीबुओं के फूलने के समय जोर की आंधी आ जाने से बहुत हानि हुई और सिसली के भूकम्प में तो बहुत जबरदस्त नुकसान हुआ। खराब मौसम में बेलेरियन गुलाब की फसल आधी रह गई थी। सन् १९०० के लगभग Montserrat द्वीप में एक आंधी ने नीबुओं की खेती को नष्ट कर दिया था और पेपेन तथा अरारूट की सामयिक उत्पत्ति बन्द कर दी थी। पकने और इकट्ठा करने के समय भी मौसम का प्रभाव फसल के बाह्य रूप रङ्ग और आकृति पर अवश्य पड़ता है। परन्तु क्रियाशील तत्वों के अनुमान करने में भौतिक आकृति औषधियों के चिकित्सोपयोगी मूल्य को आंकने में कोई आवश्यक परख नहीं है।

केमिस्ट कम से कम मूल्य पर सर्वोत्तम पदार्थ लेना चाहता है, इस लिए कृषक का भी मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि कम से कम समय में अधिक से अधिक पदार्थ प्राप्त किया जाय। विश्लेषण या अनुभव को ध्यान में रखते हुए उन में विद्यमान क्रियाशील तत्वों के अनुपात के अनुसार औषधि का मूल्य आंका जाने के कारण संग्रहकर्ता स्वाभाविकतया केमिस्ट की मांग का ध्यान रखता है। उदाहरण के तौर पर आटिमीजिया मेरिटिया सितंबर की अपेक्षा जुलाई में अधिक सेण्टोनीन पैदा करता है। साल के अधिक प्रारम्भिक मासों की अपेक्षा सितंबर की ओर एकोनाइट (अतीस) का अधिक पक्षपात है। बेलाडोना और बांसे के नये पौदे पुरानों की अपेक्षा गुणों में अधिक अच्छे होते हैं और सिन्कोना के नये वृक्षों में तुलना में थोड़े अनुपात में कुनीन होती है। ज्ञात क्रियाशील तत्वों के अनुसार औषधियों का मूल्य आंकना चाहे ठीक हो या न हो, वर्तमान काल में इस प्रकार से मूल्य आंकना सब से अधिक निश्चित और सुरक्षित

तरीका समझा जाता है; फिर भी यह खयाल करना अच्छा है कि जलवायु और संग्रह करने की अवस्थाएं औपधियों में विद्यमान अधिक पेचीदे और अज्ञात पदार्थों पर प्रभाव डालें। लोगों का इस ओर ध्यान जाने से कीमत में बिना किसी प्रकार की वृद्धि हुए कच्चे माल के गुण और परिमाण में उन्नति होती देखी गई है। एक उपयुक्त स्टैण्डर्ड का पदार्थ दिया जाने के लिए औपधि-निर्माताओं का आग्रह ही निस्सन्देह इस में मुख्य कारण प्रतीत होता है। '२ प्रति शतक से अधिक चारीयत्व (एल्कलॉयड) के वेलाडोना की प्राप्ति आज कल सन्तोषजनक समझी जाती है जब कि कुछ वर्ष पूर्व इस से आधी शक्ति की जड़े प्राप्त करना भी कठिन मालूम होता था। पहले यह आम तौर पर कहा जाता था कि जलप में होने वाले रेजिन का स्टैण्डर्ड बहुत अधिक ऊँचा है परन्तु आज कल ब्रिटिश फार्माकोपिया से अधिक स्टैण्डर्ड की औपधि सुगमता से प्राप्त हो जाती है। ऐसा भी देखा गया है कि कई बार कृषि पौदों के चारीय तत्वों की उत्पत्ति को कम कर देती है और प्राकृतिक अवस्थाओं में उगे हुए पौदे अधिक मात्रा में चारीय तत्व उत्पन्न करते हैं। सिन्कोना की खेती में जङ्गली पौदों की अपेक्षा क्रियाशील तत्व अधिक मात्रा में पाया जाता है।

यहां हम कुछ औपधियों पर संक्षिप्त टिप्पणियां दे रहे हैं—

कुष्ठ (सौसूरिया लैप्पा) दश हजार से तेरह हजार फीट की ऊंचाई पर होता है। पञ्जाब के हजारा और चम्बा जिलों में भी यह मिलता है। इस में से एक उड़नशील तेल निकलता है जो सुगन्धित तेल के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। यह सुगन्धित तेल डेढ़ सौ रुपये प्रति पौंड के हिसाब से बिकता है। कुष्ठ की जड़ों को भारत और चीन में यागयज्ञों में और मन्दिरो में सुगन्धि के लिए जलाया जाता है। इस से सुगन्धित किये हुए शालों में कीड़ा नहीं लगता। ऊनी कपड़ों आदि को कीड़ों के आक्रमण से बचाने के लिये तथा अन्य प्रयोजनों के लिये इसके उपयोग की ओर ध्यान दिया जाय तो इस की मांग बहुत बढ़ सकती है। इस समय तक यह केवल काश्मीर में ही पैदा होता है। अन्य स्थानों पर भी इसकी खेती के लिए प्रयत्न किये जाने चाहिए।

गुलवनफशा हिन्दुस्तान में बहुत अधिक प्रयोग में आता है। इसका अङ्गरेजी नाम वाइल्ड वायलेट (Wild Violet) और लैटिन नाम वायोला ओडोरेटा (Viola Odorata) है। इस के फूलों में वायलीन नाम का एक वामक क्रियाशील तत्व होता है जो विश्वास किया जाता है कि गुण में कुछ एमेटीन से मिलता जुलता है। इसके अतिरिक्त फूलों में अत्यल्प मात्रा में उड़नशील तेल, कई विशिष्ट रसक पदार्थ और वायोला केसिटीन, एक पीला तत्व और शर्करा होते हैं। लेपक, मूत्रल और हलके अनुलोमक गुणों के कारण फूल चिकित्सा में प्रयुक्त होते हैं। केवल अमृतसर के बाजार में पांचसौ मन फूल हर साल बिकते हैं। फूलों में डण्ठल, अन्य घास पात आदि मिलावटें न हों, रङ्ग में अपने स्वाभाविक रङ्ग में हों, और छाया में अच्छी तरह सुखाये

हुये हों तो साठ से एक सौ साठ रुपये तक प्रति मन के हिसाब से ये बिक जाते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि तीस हजार से नब्बे हजार रुपये का वनफशा हर साल केवल अमृतसर में खपता है। हिन्दुस्तान के दूसरे शहरों के बड़े बड़े औपधियों के केन्द्रों को देखने से अनुमान लगाया जा सकता है कि इसका कुछ लाख रुपये का व्यापार पहले से ही भारत में है और इसे और भी उन्नत किया जा सकता है। यह पौदा ऊँचे पर्वतों पर ठण्डे स्थानों पर प्राकृतिक रूप में होता है। पहाड़ों पर छायादार और नमी वाली जगहों में इसकी खेती की जा सकती है।

दारुहल्दी की लकड़ी की रस-क्रिया रसौत नाम से इस देश में आयुर्वेदिक चिकित्सा और घरेलू दवा के रूप में बहुत अधिक प्रचलित उपयोग में है। यह भी एक पहाड़ी पौदा या कांटेदार झाड़ी है। रसौत को बनाने के तरीके बहुत अधिक अपरिष्कृत हैं जिससे बाजार में मिलने वाली रसौत बहुत अधिक अशुद्ध होती है। अमृतसर हर साल लगभग २० हजार मन रसौत खरीदता है जिसका मूल्य प्रति मन सोलह रुपये के लगभग है। देश के अन्य हिस्सों में भी इसकी खपत को ध्यान में रखते हुए यदि व्यापारी लोग इसके तैयार करने की ओर ध्यान दें तो यह बहुत लाभप्रद व्यापार होगा। इसमें बहुत पूंजी की आवश्यकता नहीं। थोड़ी रकम से, ऐसे पहाड़ों पर जहाँ दारुहरिद्रा प्राकृतिक जङ्गलों में पर्याप्त उगती है, रसौत बनाने के कारखाने चलाये जा सकते हैं और यदि सुसंस्कृत तरीकों से काम लिया जाय तो हर तरह से लाभ होने की सम्भावनायें हैं। कुछ व्यापारियों ने इस ओर ध्यान दिया भी है।

ग्लिसिराइजा ग्लेब्रा (*Glycyrrhiza glabra*) की जड़ को मुलेठी कहते हैं। यह दक्षिण योरोप, एशिया माइनर, आर्मीनिया, साइबेरिया, पर्शिया, तुर्किस्तान और अफगानिस्तान में होने वाली एक बहुवार्षिक (Perennial) वनस्पति है। इटली फ्रांस, रूस, जर्मनी, स्पेन, चीन और कुछ हद तक इङ्ग्लैण्ड में भी इसके पौदे की खेती की जाती है। भारत में यह न तो जङ्गली रूप में मिलता है और न इसकी खेती की जाती है। यह प्रत्येक पान खाने वाले के दैनिक व्यवहार की चीज है और देश के प्रत्येक हिस्से में सामान्य रूप से चिकित्सा के लिये भारी तादाद में इस्तेमाल किया जाता है। भारत में इसकी खेती की ओर ध्यान दिये जाने की जरूरत है।

सालव मिश्री को आयुर्वेदिक चिकित्सक और यूनानी हकीम बलदायक और रसायन के रूप में उपयोगी समझते हैं। इसका अधिक हिस्सा पर्शिया और अफगानिस्तान से हिन्दुस्तान में आता है। यद्यपि असली सालव का वानस्पतिक स्रोत बहुत अधिक सन्देहास्पद है फिर भी ख्याल किया जाता है कि यह ओर्किस मैस्कुला (*Orchis mascula*) और उसी वर्ग की अन्य वनस्पतियों से प्राप्त की जाती है। उत्तर भारत में पाये जाने वाले यूलोफिया कैम्पेस्ट्रिस (*Eulophia compestris*) के कन्द आमतौर पर असली सालव के रूप में बेचे जाते हैं।

असली सालव का दाम १३५ से ३२० रुपये प्रति मन है। इसकी खेती भारत के जङ्गलों में की जानी लाभप्रद मालूम देती है।

जब से निम्बुरस का स्कर्वी रोगनाशक गुण मालूम हुआ है तब से चिकित्सा में इसका महत्वपूर्ण स्थान हो गया है। प्रायः प्रत्येक देश में यह भोजन के साथ अवश्य खाया जाता है। चिकित्सा के अतिरिक्त परफ्यूमरी में भी निम्बु का महत्वपूर्ण स्थान है। संसार के अन्य भागों में इसकी खेती के लिए जितना ध्यान दिया जा रहा है उसकी तुलना में हिन्दुस्तान में इस व्यवसाय के लिये बहुत कम ध्यान दिया जा रहा प्रतीत होता है। सिमिली में निम्बु व्यवसाय को सफलता मिली है। कैलेब्रिया (इटली) में भी कुछ हद तक सफलता प्राप्त हुई है। परन्तु यह वृक्ष दुनियाँ के बहुत से हिस्सों स्पेन, पुर्तगाल, फ्रांस, केलिफोर्निया, फ्लोरिडा, वेस्ट इंडीज और न्यू साउथ वेल्स में बहुत आसानी से उगता है। लाइम-जूस, लेमन-आयल और दूसरे वाई-प्रोडक्ट्स जैसे साइट्रिक एसिड, साइट्रस पिक्टीन आदि भारतवर्ष में बड़े परिमाण में बाहर से आ रहे हैं। औसतन पचास हजार से साठ हजार रुपये तक का १००० से १५०० गैलन लेमन हर साल भारत में जहाजों पर लाद कर भेजा जाता है। यद्यपि लेमनजूस की गोलियाँ आदि स्वादु तथा दिल-पसन्द चीजों के और अन्य पेयों के जिनमें ये पदार्थ होते हैं, और जो भारत के हर एक हिस्से में पहुँच चुके हैं, कोई रिकार्ड नहीं मिलते फिर भी निस्सन्देह ये आयात का बड़ा भाग बनाते हैं। गुण में भारतीय नीबू का छिलका सिसेलियन जाति के नीबू के छिलके के लगभग समान ही होता है और यह अनुमान लगाया गया है कि यदि भारतीय नीबू की छाल से नीबू का तेल निकाला जाय तो व्यापारिक दृष्टि से उसमें असफलता नहीं होगी। नीबू का उगाना कठिन नहीं है। इसके लिए नमीदार छायायुक्त स्थान, शुष्क ताजा हवा और अच्छी धूप की जरूरत होती है। भारत के बहुत से हिस्से में उपयुक्त अवस्थाएँ बिना अधिक धनव्यय के सुगमता से प्राप्त हो सकती हैं। ज़मीन की उपयुक्त और पर्याप्त सिंचाई की समस्या भी स्थान के ठीक चुनाव से सफलतापूर्वक दूर की जा सकती है। कुछ कृषि-विशेषज्ञों ने घाट हिल्स के मार्ग पर पानी के अच्छे निकास वाला प्रदेश सुझाया है। वास्तव में भारत में निम्बु की कृषि की अवस्थायें किसी भी तरह से घटिया नहीं हो सकतीं। केलिफोर्निया, फ्लोरिडा और न्यू साउथ वेल्स में हाल में ही निम्बु व्यवसाय प्रारम्भ हुआ है और शीघ्र ही बढ़ गया है। कृषि-सम्बन्धी आधुनिक वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग करते हुये कोआपरेटिव प्रयत्नों से निम्बु-व्यवसाय भारत की अनुकूल जलवायु में बहुत अच्छा पनप सकता है।

हिमालय पर्वत श्रेणियों पर शिमला से काश्मीर तक समुद्र तट से ६००० से १२००० फीट की ऊँचाई तक एट्रोपा वेलाडोना बहुतायत से उगता है। कुनावार में जङ्गली रूप में ८५०० फीट की ऊँचाई तक भी पाया जाता है। वेलाडोना प्रबल शामक, वेदनाहर और उद्धर्तहर है।

89-1-0
82-6
6-11

8

एलोपैथी में यह बहुत अधिक बरता जाता है। इसकी जड़ मुख्यतया क्रियाशील चारीय तत्व एट्रोपीन बनाने के काम आती है जो आंखों के लिए विविध प्रकार से व्यवहार की जाती है। कारमीर के जंगलों में उगने वाले वेलाडोना की जड़ों में से ०.४५ प्रतिशत चारीय तत्व निकाला गया है। व्योलीकोट में कुमायूँ गवर्नमेण्ट गार्डन्स के सुपरिण्टेण्डेण्ट द्वारा बोये गये एक साल और दो साल पुराने वेलाडोना पौदों की जड़ों में क्रमशः ०.४ और ०.४५ प्रतिशतक चारीय तत्व निकला। युरोपियन जड़े ०.२ से ०.६ प्रतिशतक चारीय तत्व देती हैं। इससे प्रतीत होता है कि भारत में एट्रोपा वेलाडोना की कृषि चिकित्सा की दृष्टि से औसतन अच्छी किस्म की जड़े दे सकती है।

भारत के औषधालयों के अन्तः और बाह्य व्यापार के आँकड़े तैयार किये जाने चाहिये जिससे प्रत्येक औषधि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हो सके, तथा यह भी मालूम हो सके कि प्रत्येक प्रान्त में कितनी खपत है और उसका वानस्पतिक स्रोत क्या है। इस प्रकार इन आँकड़ों को प्राप्त करके उन जङ्गलों को सुरक्षित करना चाहिये जहाँ ये औषधियाँ प्राकृतिक रूप में उगती हैं। उनके जलवायु और उनकी परिस्थितियों का अध्ययन करके उनकी खेती करने के तरीकों पर विचार किया जा सकता है। खेती से प्राप्त तथा जङ्गल में उगने वाले नमूनों का रासायनिक विश्लेषण करके तुलनात्मक अध्ययन करना उनकी खेती में और अधिक सुधार करने में सहायक होगा। इस प्रकार क्रमिक अन्वेषण से उत्तम गुण वाली औषधियाँ प्राप्त की जा सकती हैं और निकम्मी औषधियों को निकाल कर अच्छी औषधियों को खोज कर विदेशों से आने वाली दवाओं के स्थान पर उनको ग्रहण किया जा सकता है।

भारत में चिकित्सोपयोगी पौदों की खेती एक नया उद्योग हो जाना चाहिये। बाहर से आने वाली हजारों मन और लाखों रूपयों की औषधियों को देखते हुये मालूम होता है कि वनस्पतियों की कृषि करने में अभी बहुत अधिक विस्तृत क्षेत्र है।

३३/१ ५८०

१५/०५/२२ २

१६/०५/२२ ४

६/०५/२२ ४

१५/०५/२२

१५/०५/२२

१५/०५/२२

उत्तकालप
रुकुल कांगड़ी

08 AUG 2006

DIGI-AC

03472 3009

177-100

020-0151110
8000-2001

08 AUG 2006

08 AUG 2006

DIGITIZED C-DAC
2005-2006



100 100 100

0.8 AUG 2006

DIGITIZED C-DAC
2005-2006

SAMPLE STOCK VERIFICATION
1988

VERIFIED BY

Entered in Database

Signature with Date

